Chap-6

## षष्ठ- अध्याय

## साठोत्तर कहानियाँ और पारिवारिक जीवन मूल्य

कहानी को मात्र कल्पना के मंजुल पंखों के सहारे स्वर्णिम लोकों का विचरण मात्र समझने वाले कतिपय आलोचक भले ही कहानीकार और युगीन जीवन मूल्यों का कोई सम्बंध स्वीकार न करें पर दोनों में अविच्छिन्न सम्बन्ध है। युग की परिस्थितियों तथा मूल्यों को अस्वीकार तथा जीवन की वास्तविकता से कट कर कहानीकार सागर-लहरों और अम्बर के बीच चलने वाली निश्छल प्रेम कथा को कहकर कहानियों का सृजन नहीं कर सकते। यह निर्विवाद सत्य है कि कहानीकार उसके परिवेश के मूल्य से जन्य निष्कर्ष- बिन्दु पर ही सृजन- चेतना द्वारा प्रस्फुटित कण अपना अमन्द आलोक सर्वत्र विकीर्ण कर सकता है, जिससे कहानीकार के लिए अपनी कृति में समाज व मानव जीवन की संश्लिष्टताओं व यथार्थ को समग्र रूप में सम्प्रेषित करना सहज स्वाभाविक बन जाता है। इस प्रकार से लिखी कहानी व्यष्टि अथवा समष्टि के मूल्यों पर आधारित होते हुए दोनों के लिए कल्याणकारी बन जाती है।

आधुनिक युग विज्ञान का युग है, जिसने मानव को ऐसी तार्किकता प्रदान की है, जिसके द्वारा वह प्राय: परंपरागत मूल्यों के प्रति आस्थावान न रहकर उसे तर्क की कसौटी पर कसने का प्रयत्न करता है। तर्क द्वारा सिद्ध होने पर ही वह अनेक मूल्यों को स्वीकारता है। तार्किक दृष्टिकोण ने ही अनेक परंपरागत मूल्यों को नये मूल्यों में परिवर्तित करने के अनुरूप भूमि तैयार की है। यही स्वर आज के जीवन के मूल्य- संघर्ष या विघटन के रूप में सर्वत्र विद्यमान दृष्टिगोचर होता है। साठोत्तर कहानी इसी कारण परंपरागत मूल्यों के विघटन तथा नवीन जीवन मूल्यों के उदय का सशक्त माध्यम बनी है। वस्तुत: प्राचीन समय में अत्यन्त सार्थक लगने वाले अनेक मूल्य भी आज अर्थहीन लगने लगे हैं। इसी कारण साठोत्तर कहानी एक प्रकार से मूल्य- संघर्ष की कहानी ही बन गयी है।

साठोत्तर कहानियों में परम्परागत प्रत्येक आरोपणों को अस्वीकार कर व्यक्ति को यथार्थ परिवेश के मध्य अंकित किया गया है। यही कारण है कि आज की कहानी में शाश्वत मूल्यों की अपेक्षाकृत सम- सामयिक मूल्यों को अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। इसके कारण उसमें परिवार का एक नवीन परिवर्तित स्वरूप हमारे सामने आता है, जहाँ एक ओर परम्परा से चलती आ रही संयुक्त परिवार प्रथा का मूल्य विघटित होकर एकाकी परिवार के मूल्य में विकसित होता जा रहा है तो दूसरी ओर पारिवारिक सदस्यों में परस्पर असम्बद्धता के दर्शन होते हैं। पंचम अध्याय में यह स्पष्ट किया गया है कि साठोत्तर कहानियों में एक ओर परिवार का स्वरूप बदल रहा है तो दूसरी ओर उसके सदस्यों के सम्बंधों में नितान्त परिवर्तन आ रहा है। इन्हीं बदलते स्वरूप के कारण विघटित मूल्यों पर विचार करना यहाँ अभीष्ट है।

## 1- परिवार का स्वरूप और विघटित होते मूल्य :

पंचम अध्याय में लक्ष्य किया जा चुका है कि परिवार के सदस्यों के मध्य अलगाव की भावना प्राय: सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। इनमें पिता- पुत्र, मां- बेटी, पति-पत्नी या भाई- बहन जैसे निकटतम सम्बंधों में एक अजनबीपन समाता जा रहा है जिससे संयुक्त परिवार प्रथा उसके मूल्यों यथा- सद्भाव, परस्पर सहयोग आदि का विघटन हो रहा है। फलत: एकाकी परिवार तथा व्यक्तियों में वैयक्तिकता, अहं व व्यक्ति स्वातंत्र्य, आर्थिक सम्पन्नता की ललक जैसे मूल्य स्थान लेते जा रहे हैं।

परंपरागत परिवारों में परिवार का वरिष्ठ व्यक्ति पूज्य माना जाता था। उसका अंकुश व एकछत्र शासन परिवार के सभी सदस्यों द्वारा मान्य था।

इस स्थिति का अवमूल्यन आज अनेक संयुक्त परिवारों में मिलता है। 'वापसी' (उषा प्रियंवदा) कहानी के पिता सेवा-निवृत्त होकर जब अपने घर वापस आते हैं तो उन्हें परिवार के मध्य एकाकीपन तथा अजनबीपन की अनुभूति होती है। उन्हें न तो उच त सम्मान मिलता है और न आत्मीयता ही। उनके प्रति कृतज्ञता का भाव भी परिवार के किसी सदस्य में नहीं दिखायी देता। मानों वे कोई अनपेक्षित और अनाहूत बाहरी व्यक्ति बन गये हों। नौकरी करते रहने की दीर्घ अवधि में घर से पृथक होने पर मूल्यों में इतना अधिक अन्तर व्याप्त हो चुका था कि वे अपने घर में स्वयं को अनावश्यक और अजनबी मानने पर विवश हो जाते हैं और उन्हें विवशता में वहीं जाना अधिक सुखद प्रतीत होता है जहाँ वे पहले थे। गजाधर बाबू का यह अकेलापन केवल उन्हीं का अकेलापन नहीं है अपितु उस सारे वर्ग का अकेलापन है जो कि अपने पुरातन संस्कारों के कारण बदले हुए समय के साथ चलने में असमर्थ रहता है। इसी कारण वह परिवार के मध्य अपने को ही मिसफिट अनुभव करता है।[1]

साठोत्तर कहानियों में एक ओर परंपरा से चले आ रहे संयुक त परिवार के वरिष्ठ व्यक्तियों की प्रतिष्ठा को ठेस लगी है तो दूसरी ओर पारिवारिक सदस्यों के मध्य असम्बद्धता मिलती है। 'शेष होते हुए' (ज्ञानरंजन) कहानी के परिवार में घर अन्दर ही अन्दर खंडित हो रहा है तथा प्रत्येक व्यक्ति त वैयक्तिकता से उत्पन्न अलगाव व स्वातंत्र्य चेतना का मूल्य प्रतिस्थापित करता हुआ दृष्टिगोचर होता है। संयुक्त परिवार प्रणाली का विघटित मूल्य 'वेतन के पैसे' (महीप सिंह) कहानी में भी दृष्टिगोचर होता है। गोपाल अपने पिता को अपनी समस्त कमाई न देकर अपनी गृहस्थी स्वयं व पृथक् रूप से चलाना

चाहता है तथा संयुक्त परिवार से अलग हो जाता है। संयुक्त परिवारों के विघटन में सदस्य एक दूसरे से असम्बद्ध तथा अलगाव की भावना से पूर्ण अनुरंजित रहते हैं।

**४- सदस्यों का अलगाव तथा वैयक्तिक मूल्य की स्थापना :**

इस दृष्टिकोण से सर्वप्रथम विवेचनीय कहानी 'एक नाव के यात्री' (शानी) हैं। रत्ना व रज्जन एक ओर परिवार में अपनापन नहीं पाते तो दूसरी ओर परिवार के सदस्य भी उनके प्रति परायेपन का अनुभव करते व अपने गन्तव्य में व्यस्त होना चाहते हैं। 'सन्नाटा' (महीपसिंह) कहानी की माँ- बेटी वैयक्तिकता के इसी मूल्य से पूर्ण सम्पृक्त हैं जहाँ उन्हें परिवार में एक साथ रहते हुए भी आपस में बिना बातचीत के हफ्तों गुजर जाते हैं। इसी प्रकार की असम्बद्धता तथा अलगाव व अवमूल्यन की स्थितियाँ 'कटी हुई तारीखें' (अन्विता अग्रवाल) और 'मायादर्पण' (निर्मल वर्मा) कहानियों में भी दृष्टिगोचर होती है, जहाँ परिवार से दूर रहने वाले व्यक्तियों के मध्य दमित वृत्ति, हीनता ग्रन्थि, जीवन की कृत्रिमता तथा मूल्यहीनता का प्रतिपादन पूर्ण रूप से मिलता है। इस प्रकार वैयक्तिकता के मूल्य से सम्पृक्त होकर आज की इन कहानियों में व्यक्ति अपने सीमित परिवेश में ही सिमटता जा रहा है। 'दायरा' (रामकुमार) कहानी इसी अवमूल्यन की स्थिति की द्योतक है। इसमें माता- पिता, पति- पत्नी सभी अपने-अपने कार्यों, अपने-अपने दृष्टिकोण व मानसिकता से जुड़कर एक दूसरे से असम्बद्ध एवं व्यस्त हैं, दूसरों की समस्या समझने में असमर्थ हैं। 'बीच की कड़ियाँ' (शशिप्रभा शास्त्री), 'शरण्य की ओर' (मृणाल पांडे), 'मूल्य', 'सन्धिपत्र' (दीप्ति खंडेलवाल), 'अलग-अलग कमरे' (मृदुला गर्ग) आदि कहानियों में इसी अलगाव, युवा पीढ़ी में सम्बंधों का बिखराव व आधुनिकता की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। यहाँ तक कि युवा पीढ़ी

में अलगाव, वैयक्तिकता इतनी प्रधान होती जा रही है कि वे अपने विवाह जैसे अवसर की सूचना अपने माता-पिता को देकर अपने कर्तव्य पालन का मूल्य बरकरार रखना चाहते हैं। माता- पिता की उपस्थिति विवाह जैसे सांस्कृतिक कृत्य में अनिवार्य है यह धारणा अब लगभग समाप्त होती जा रही है। 'तट से छूटे हुए' (सुरेश सिन्हा) कहानी इसी परिवर्तित मूल्य दृष्टि को द्योतित करती है। यही कारण है कि 'क्वार्टर' कहानी जैसी अनेक कहानियों में परिवार की स्थिति एक प्रतीक्षालय की भाँति ही हो जाती है, जहाँ परिवार के सदस्य कुछ समय के लिए एक साथ रहने को विवश से दृष्टिगोचर होते हैं।

उपर्युक्त साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि साठोत्तर कहानियों में एक ओर संयुक्त परिवार का मूल्य समाप्त प्राय दृष्टिगोचर होता है तो दूसरी ओर वृद्धजन परंपरागत मूल्यों के प्रति आस्थावान दृष्टिगोचर होते हैं। ऐसे व्यक्तियों को अपने मूल्य व मान मर्यादा बरकरार रखने के लिए नयी पीढ़ी, नये परिवेश व नयी मानसिकता के मध्य संघर्ष करना पड़ता है। संघर्ष में वे कहीं सफल होते हैं तो कहीं असफल अत:परम्परागत मूल्यों की स्थिति तथा उनके प्रति आस्थावान व्यक्ति किस प्रकार प्रयत्नशील हैं, यह भी यहाँ विचारणीय है।

3- परम्परागत मूल्यों की आस्था तथा परिवेश से संघर्ष :

साठोत्तर कहानियों में अनेक नारियाँ ऐसे मूल्यों के प्रति आस्थावान होती दिखायी गयी हैं। ये नारियाँ पत्नी अथवा माता के रूप में परिवार में अनेक अत्याचार व अन्त:संघर्ष सहकर भी अपनी मानसिकता में परिवर्तन नहीं

सहकार-भी-अम ला पातीं । इनमें सर्वप्रथम विवेचनीय कहानी ज्ञानरंजन कृत 'कलह' है जिसकी माँ अपने पति से पिट कर तथा दूसरी स्त्रियों के साथ अपने पति के अशिष्ट प्रेमाचार देखकर भी पति को किसी के सामने कुछ नहीं कहती । वह रात्रि में पति से पत्नीत्व के अधिकार की माँग के लिए अवश्य झगड़ती है, किन्तु दिन में मातृत्व का दायित्व भी पूर्णतया निभाती है । बच्चों के समक्ष किसी अशिष्ट व्यवहार का प्रदर्शन नहीं करती । वह पतिव्रता के परम्परागत मूल्य के प्रति पूर्ण रूप से आस्थावान रहकर समस्त मानसिक यातनाओं को सहन करती है । इसी लेखक की 'शेष होते हुए' कहानी की माता परिवार को विघटन से बचाने के प्रयास में पुत्र-पुत्री के आरोपों को सहन करके भी संयुक्त परिवार प्रथा का परम्परागत मूल्य बनाये रखने का असफल प्रयत्न करती है । यहाँ तक कि 'सम्बंध' कहानी की माँ अपने मरने तक परिवार की मंगल कामना से छोटी से लेकर बड़ी वस्तु सभी कुछ उसी रूप में सुरक्षित चाहती है जैसी वह आज है । चाहे वह रसोई घर की वस्तु हो, परिवार के सदस्यों के सम्बंध हो या संयुक्त परिवार प्रथा हो सभी को बनाये रखने के प्रयत्न में वह स्वयं ही परिवार से कटती जाती है ।

इन कहानियों में कुछ ऐसी नारियों के दर्शन भी होते हैं जो परंपरागत मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में आदर्श नारियाँ कही जा सकती हैं । पति चाहे कैसा भी हो फिर भी उनके लिए वही सर्वस्व है । 'उसकी रोटी' (मोहन राकेश)कहानी की बालो भी इसी मूल्य का समर्थन इस प्रकार करती है -' --- सुच्चा सिंह कैसा भी है उसके लिए सब कुछ वही था, वह उसे गालियाँ देता था, मारपीट लेता था फिर भी उसे इतना प्यार तो करता था कि हर महीने पर तनखाह मिलने पर उसे बीस रूपये दे जाता था । लाख बुरी कहकर भी उसे घरवाली तो

मानता था---।' [2] इसी परंपरागत मूल्य के प्रति आस्थावान तथा आदर्श में लिपटी पतिव्रता नारी मन्नूभंडारी कृत 'नशा' कहानी की 'आनन्दी' तथा भीष्म साहनी कृत 'सिरका सदका' कहानी की इशरो हैं जो पति से उपेक्षित होने पर भी पत्नीत्व व पातिव्रत धर्म का पालन करके प्रत्येक स्थिति में पति का साथ देती हैं। कृष्णा-सोबती की कहानी 'तिन पहाड़' की माँ घर की मान-मर्यादा बचाने के लिए पुत्र के दूसरी स्त्री के साथ सम्बंधों को अस्वीकारती है और असमर्थता में स्वयं का बलिदान कर देती है। उसके शब्दों में परंपरागत मूल्यों के प्रति आस्था, संयुक्त परिवारों में माता का नियंत्रण आदि परंपराओं का दर्शन इस प्रकार मिलता है। '--- कहे देती हूँ कानू, घर की बहू जो की है, वही रहेगी। ले-देकर उस साहिबन को परे कर, नहीं तो जान ले अन-जल ग्रहण किये बिना ही अपनी जान दे दूँगी -- ।' [3]

परम्परागत संयुक्त प्रणाली में वरिष्ठ व्यक्ति का एक छत्र शासन ही सर्वमान्य रहता था। इस स्थिति के दर्शन 'छत बनाने वाले' (मन्नू भंडारी) कहानी में होते हैं। कहानी के ताऊ जी की आज्ञा के बिना कोई बच्चा हिल तक नहीं सकता। 'पुरानी मिट्टी : नये ढांचे' (वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता) कहानी के पिता भी एक सीमा तक इसी स्थिति के प्रतिरूप हैं। उनका बेटा अनुभव करता है '---- असल बात यह है कि मकान पिता का है और मैं भी उनका बेटा हूँ, मुझ पर उनका उतना ही अधिकार है जितना मकान पर, यानि जिस प्रकार लोग मकान को अपनी इच्छा से सजाते हैं ठीक उसी प्रकार मेरे दिमाग की सजावट का बोझ भी उन्होंने अपने कन्धे पर ले लिया है।' [4]

शानी की 'जिन्दगी जलती है' कहानी के पिता भी अपनी मान-मर्यादा

व प्रतिष्ठा के झूठे अहंकार में अपनी युवा बेटी के विवाह के लिए वर खोजने तक का कष्ट नहीं करना चाहते । उनका विचार है कि उनके मान- सम्मान के कारण उन्हें बेटी के वर की प्राप्ति घर बैठे ही सहज हो जायेगी ।[5] इसी स्थिति से विवश(मायादर्पण' (निर्मल वर्मा) कहानी के पिता हैं, जिन्हें अपनी पुरानी वर्ग सम्पन्नता व खानदानी शान-शौकत जो आज पूर्ण रूप से समाप्त हो चुकी है, का मिथ्या अहंकार है । '----मान-गौरव नहीं रहा, जमीन जायदाद कब की बिक लुट गयी, बाप दादा की विरासत के नाम पर बचा रह गया है यह मकान और समय की धूल में लदापदा फटे चिथड़े जैसा दीवान का खिताब जिसे ओढ़ लो चाहे बिछा लो, पर जो आज नहीं है, उसे कोई कब तक मानेगा ।'[6]

कुछ कहानियों में जातिगत गौरव निर्मित मान्यताओं और आस्थाओं के प्रति व्यक्ति संघर्ष करता व आस्थावान रहना चाहता है । एक ओर उसे कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है तो दूसरी ओर समाज का विरोध सहन करना होता है । 'आतंक भरा सुख' (मेहरुन्निसा परवेज) कहानी इन्हीं मूल्यों को उजागर करती है, जहाँ जातिगत विषमता से जातीय संघर्ष के मूल्यों में बंधकर व्यक्ति केवल टूटता ही नहीं अपितु जाति का बोध ही उसे जीवनयापन करने में एक अवरोध लगने लगता है । उपर्युक्त कहानी में घर में खाने के लिए न तो अन्न है और न पहनने के लिए कपड़े फिर भी माँ जातीय-मूल्यों के प्रति आस्थावान है तथा छोटे-छोटे कार्य करके अर्थार्जन करना अपनी जाति के विरुद्ध मानती है । '---जात के राउत हैं, वरना मैं ही कहीं बरतन मांजने पर लग जाती ---'[7] इसी प्रकार के मूल्यों की स्थापना कराती हुई

एक ओर संयुक्त परिवार प्रथा की कथा कहती 'राजा निरबंसिया' कहानी की माँ है तो दूसरी ओर जगपति व चन्दा परम्परागत मूल्यों के प्रति आस्थावान रहना चाहते हैं। पंचम अध्याय में लक्ष्य किया जा चुका है कि एक ओर चन्दा पतिव्रता स्त्री है तो दूसरी ओर जगपति अपनी पत्नी के अन्यत्र सम्बंध स्वीकार नहीं करता, परन्तु नये परिवेश व आर्थिक विवशताओं के मध्य दोनों के मूल्यों में परिवर्तन आ जाता है। चन्दा पति की नौकरी व जिन्दगी बचाने के लिए बचनसिंह के प्रति समर्पित होती है तथा जगपति बचनसिंह के पुत्र व चन्दा को फिर से अपना लेता है तथा यथार्थता को स्वीकार करता हुआ नये मूल्यों की स्वीकृति का आकांक्षी दिखाई देता है। 'उलझन' (महीपसिंह) कहानी की पत्नी सुरजीत भी एक ओर नयी परिस्थितियों व पारिवारिक आवश्यकताओं से अभिभूत होकर पति से घर के कार्यों में सहयोग की अपेक्षा रखती है तो दूसरी ओर उसके संस्कार उसे परंपरागत मूल्यों के प्रति आस्थावान बनाये हुए हैं और वह पति को घर का कार्य व अपना कार्य स्वयं करते देख दु:खी होती है तथा इसके लिए अपने आपको दोषी मानती है।

अत: यह स्पष्ट है कि इन कहानियों में परंपरागत मूल्यों का अवशिष्ट रूप भले ही मिले, परन्तु उसके प्रति पूर्ण आस्था प्राय: समाप्त हो चुकी है। 'दायरे और दायरे' (रजनी पनिकर), 'कमरे, कमरा, कमरे' (मन्नू भण्डारी), 'तनाव' (दीप्ति खण्डेलवाल) तथा 'फेंस के इधर और उधर' (ज्ञानरंजन) आदि कहानियाँ इसी दृष्टिकोण व मूल्य संघर्ष की कहानियाँ हैं। यहाँ तक कि पुराने व्यक्तियों के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आने लगा है। वे भी 'उजाले के उल्लू' (महीप सिंह) कहानी की भाँति व्यंग्यात्मक रूप से सोचने पर विवश से प्रतीत होते हैं कि उनकी दृष्टि अब कमजोर हो गयी है। अब उन्हें अधिक

नम्बर का चश्मा लाने की आवश्यकता है जिससे वे आसपास की वस्तुएँ भली-भाँति देख सकें। अर्थात् नयी पीढ़ी के साथ सामंजस्य स्थापित करने के लिए उन्हें अपने परंपरागत मूल्यों को त्यागना ही पड़ेगा। कहा जा सकता है कि आज कहानियों में चित्रित मूल्य परंपरा से किंचित हट कर परिवर्तन की दिशा में उन्मुख हुए दृष्टिगोचर होते हैं, क्योंकि परंपरागत मूल्यों के प्रति आस्थावान व्यक्तियों को नयी पीढ़ी से संघर्ष करने में प्राय: असफलता तो मिलती ही है इसके साथ ही वे उन्हें समय के अनुरूप भी नहीं मानने लगे हैं। 'बिरादरी बाहर' कहानी के पिता परंपरागत मूल्यों के प्रति आस्थावान रहकर अपनी पुत्री को प्रेम विवाह की अनुमति नहीं देते तथा नयी पीढ़ी से संघर्ष करते हैं। इस संघर्ष में वे स्वयं को ही समाज से व बिरादरी से बहिष्कृत अनुभव करते हैं। प्राचीन समय में परम्परागत मूल्यों का अनुसरण न करने वाले को बिरादरी से बहिष्कृत किया जाता था परन्तु आज के बदलते परिवेश में परंपरागत मूल्यों का अनुसरण करने वाला व्यक्ति ही अपने को समाज से बहिष्कृत अनुभव करता है। यह बहिष्कार मात्र 'बिरादरी बाहर' कहानी के एक पिता का ही नहीं अपितु ऐसी संपूर्ण पीढ़ी का है, जो प्राचीन मूल्यों के प्रति आस्थावान रहकर उसके खोखले आदर्शों से चिपके रहना चाहती है। ज्ञानरंजन की 'पिता' कहानी के पिता की स्थिति भी ऐसी ही है, जो परिवार के मध्य रहते हुए भी निर्वासित जैसे हो गये हैं। नयी पीढ़ी एक ओर उनके मूल्यों को अमान्य घोषित कर रही है तो दूसरी ओर कहीं-कहीं उसके सामने दयनीय व कुंठित भी होती जा रही है।

अत: निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि आज के बदलते परिवेश व नयी पीढ़ी के मध्य परंपरागत मूल्य शिथिल होकर टूट रहे हैं, जो साठोत्तर

कहानियों में पूर्ण सजगता के साथ अंकित हुए हैं। इनमें एक ओर पुरानी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र हैं जो परम्परागत मूल्यों से लिपटे हुए हैं तो दूसरी ओर ऐसे पात्र भी हैं जो पुराने मूल्यों का विरोध करके नये मूल्यों की प्रतिष्ठा के आकांक्षी हैं। तृतीय अध्याय में लक्ष्य किया जा चुका है कि शिक्षा का प्रसार, पाश्चात्य सभ्य सभ्यता का प्रभाव तथा नारी की आर्थिक स्वतंत्रता आदि कुछ ऐसे पक्ष हैं जिनका प्रभाव पूर्ण रूप से व्यक्ति की मानसिकता पर पड़ा। परोक्ष रूप में परंपरागत मूल्य प्रभावित हुए और नये मूल्यों के विकास को पूर्ण अवकाश मिला। अत: इन प्रमुख पक्षों तथा मूल्यों से सम्बंधित चर्चा करना यहाँ आवश्यक है। इन पक्षों में सर्वप्रमुख पक्ष नारी का अर्थार्जन और उससे निर्मित परिस्थितियों तथा तज्जन्य जीवन दृष्टि का है।

4- नारी का अर्थार्जन और विघटित मूल्य :

परम्परागत परिवारों में पुरुष का शासन व स्वामित्व ही प्राय: रहता था। पुरुष-पिता, पति अथवा पुत्र कोई भी हो सकता था। परंतु आज शासन की डोर पुरुष तक सीमित न रहकर अर्थार्जन से सम्पन्न व्यक्ति के हाथ में आ गयी है। चाहे वह पुरुष हो अथवा नारी। 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' कहानी में सुबोध की मानसिक यातना का कारण यही मूल्य-संघर्ष है। आज वह बेरोजगार है। उसकी छोटी बहन वृन्दा अर्थार्जन करती है। इसी कारण वृन्दा ने आज स्वाभाविक रूप से गृहस्वामिनी का पद संभाल लिया है तथा सुबोध का सार्वत्रिक अवमूल्यन हो गया है। यहाँ तक कि नौकरी के छूटते ही उसकी प्रेमिका भी उसे छोड़ देती है, और उसे प्रेम शाश्वत मूल्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति न होकर अर्थ से जुड़ा प्रतीत होता है। आज के परिवेश में अधिकांशत: नारी आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होने लगी है तथा

M. S. UNIVERSITY OF BARODA UNIVERSITY LIBRARY

परिवार के शासन की डोर पुरुष के हाथ की अपेक्षाकृत उसके हाथ में दृष्टिगोचर होती है। यह स्थिति एक नवीन पारिवारिक संघर्ष का सूत्रपात करती है।

उक्त मानसिक स्थिति से आक्रान्त तथा पुरुष के स्वामित्व को नकारने वाली 'लोग' कहानी की नीला व युवती नारियाँ हैं। नीला के इन शब्दों से आर्थिक स्वतंत्रता व पुरुष के स्वामित्व की अस्वीकृति स्पष्ट है'--- इस छोटी सी नौकरी से गुजारा हो ही जाता है --- अब मैं उनके पैरों पड़ने से तो रही----'[8] मोहन राकेश ने अपनी कहानियों में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण रखते हुए नवीन जीवन मूल्यों को मान्यता दी है। उनका विचार है कि हमारे अंदर की वह व्याकुलता, वह चीख जिसे दबाये रखने का संस्कार हमें सदियों पहले दिया गया था, यदि इस माध्यम से ठीक से ध्वनित नहीं हो पाती तो अगली पीढ़ी को इससे चिपके रहने का कोई आग्रह नहीं होगा।[9] इसी स्थिति का द्योतन करती 'एक और जिन्दगी' (मोहन राकेश), 'फैंस के इधर और उधर' (ज्ञानरंजन) तथा 'कटघरे' (भीष्म साहनी) आदि कहानियाँ हैं। 'एक और जिन्दगी' कहानी उन्हीं नव विकसित मूल्यों को उजागर करती है जिसमें शिक्षित बीना किसी प्रकार के परंपरागत वैवाहिक बंधन स्वीकार न करके स्वच्छंदता से जीवन यापन करना चाहती है। यही स्वच्छंद प्रवृत्ति उसके सम्बंधों में बिखराव ला देती है और वह नवीन मूल्यों के पथ पर अग्रसर होकर सम्बंध विच्छेद कर लेती है तो दूसरी ओर स्पर्द्धा भरी जिन्दगी प्रकाश को अत्याधिक विघटित कर देती है। अत: कहा जा सकता है कि आज के औद्योगिक विकास में अर्थार्जन का अवसर पाकर जैसे-जैसे नारी आर्थिक रूप से स्वतंत्र होती जा रही है वैसे- वैसे पुरुष का पुरुषत्व भी आहत होता जा रहा है। दूसरे शब्दों में पूर्ववर्ती काल के

सन्दर्भ में उसका एक सीमा तक अवमूल्यन हो रहा है। यही कारण है कि नारी पति के समक्ष आज अपने अस्तित्व को अधिक महत्वपूर्ण और मूल्यवान समझने लगी है।

उपर्युक्त स्थिति का दूसरा पक्ष भी है। पुरुष अपनी स्वार्थपरता से वशीभूत होकर उसकी उपयोगिता के पक्ष को महत्व देकर अपने पारिवारिक दायित्व व कर्तव्य पालन से भी च्युत देखा जा सकता है। उदाहरणस्वरूप परंपरागत परिवारों में बेटी की कमाई न खाने का मूल्य भी समाप्त हो चुका है। 'रबरबैन्ड' (अन्विता अग्रवाल) कहानी के माता-पिता घर का खर्च चलाने के लालच से एक ओर पुत्री का विवाह शीघ्र नहीं करना चाहते तो दूसरी ओर अर्थार्जन करने वाला भाई भी परिवार के व्यक्तियों के आर्थिक उत्तरदायित्व उसी बहन पर छोड़ कर विदेश चला जाता है। यहाँ पुरानी पीढ़ी में परंपरागत मूल्य परिवर्तन का जीता-जागता रूप अंकित हुआ है। फलत: नारी की जिन्दगी मात्र आर्थिक स्वतंत्रता में सहायक बन कर कभी-कभी सात घंटे तक ही सीमित रह जाती है। उसके बाद समय बिताना उसके लिए कष्टदायक हो जाता है तो कहीं 'छुट्टी का दिन' भी उसके लिए एक पहाड़ जैसी समस्या बन जाता है। 'जिन्दगी सात घंटे बाद की' (ममता कालिया) तथा 'छुट्टी का दिन' (उषा प्रियम्वदा) आदि कहानियाँ इसी स्थिति को उजागर करती हैं। इसी आर्थिक दृष्टि से आक्रान्त तथा स्त्री-पुरुष दोनों के परिवर्तित मूल्य की कहानी 'सुहागिनें' (मोहन राकेश) है। परंपरागत मूल्य में पुरुष का अर्थार्जन, उसके व्यक्तित्व को उभारने तथा पत्नी की नौकरी उसके पुरुषत्व को एक चुनौती के रूप में मानी जाती थी। आज पति स्वयं उक्त कहानी में पत्नी को उसके पत्नीत्व व मातृत्व से वंचित करके अर्थार्जन के लिए बाहर भेज देता है। उसके पत्रों में

भी प्रेम सम्बंधी बातों की अपेक्षा अपने लिए कोट व बहन के लिए शाल भेजने का आग्रह अधिक रहता है। यहाँ नारी पारिवारिक सम्पन्नता की साधन-रूपा यंत्रमात्र है, पारिवारिक जीवन का महत्वपूर्ण अंग उसे नहीं कहा जा सकता। उषा प्रियंवदा की 'स्वीकृति' कहानी भी इन्हीं परिवर्तित मूल्यों का द्योतन करती है जहाँ सत्य अपनी पत्नी जया को हिंदी की शिक्षिका के रूप में विदेश नौकरी करने भेज देता है।

पंचम अध्याय में यह लक्ष्य किया जा चुका है कि साठोत्तर कहानियों में अधिकांशत: जीवन के नये आयाम नयी व्याख्या को स्वीकार करते हैं जिससे दाम्पत्य सम्बंध, पारिवारिक सम्बंध आदि में अन्तर दृष्टिगोचर होता है। नये आयामों का बनना ही नवीन मूल्यों के विकास की भूमि तैयार करना या उनका समायोजन है, जिन्हें कुछ कहानियों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। सातवें दशक की यातनाओं, नारी-पुरुष के सम्बंधों में विघटन तथा टूटने की प्रक्रिया को पूर्ण क्षमता से अभिव्यक्त करने वाली कहानी 'टूटना' (राजेन्द्र यादव) है जिसमें कृत्रिक विघटन तथा टूटते मूल्यों के अन्तर्द्वन्द्व में पिसते पति-पत्नी के जीवन को उजागर किया गया है। जीवन मूल्यों के विघटन की प्रक्रिया ही पति-पत्नी के परंपरागत सम्बंधों को समाप्त करती तथा पारिवारिक विघटन को जन्म देती है। इसका नायक किशोर मूल्यों के अन्तर्द्वन्द्व में फँसा ऐसा व्यक्ति है, जो युवा काल में पारंपरिक मान्यताओं को मानता था तथा नारी के प्रति कठोर अनुशासन तथा श्रम को आकांक्षित मूल्य व महत्वपूर्ण समझता था। यहाँ तक कि उसे लीना जैसी अभिजात्य संस्कारों में पली लड़की को अपनी पत्नी के रूप में पाकर आश्चर्य होता है, और उसका पुरुषोचित अहं अनेक पारम्परिक मान्यताओं तथा लीना की उन्मुक्त

प्रवृत्तियों को इस कारण स्वीकार नहीं कर पाता क्योंकि वह एक बड़े बाप की बेटी है। किशोर के अन्तर्मन में वर्गगत असमानता की चेतना सर्वत्र विद्यमान रहती है। यही चेतना उसे कुंठित व आत्महीन बना कर उस मूल्यवादी जीवन से पृथक करके धर्मभीरु , नीतिपरक, अकर्मण्य तथा ऐसा सिद्धान्तवादी बना देती है जहाँ वह जिन मूल्यों के लिए लड़ता है उन्हीं मूल्यों के कारण उसे नीचा देखना पड़ता है। दाम्पत्य जीवन में बिखराव के पश्चात् वह परंपरागत मूल्यों से विमुख होकर व्यावहारिक मूल्यों का समर्थक बनता है और प्रत्येक सफलता व प्रतिष्ठा का आधार अर्थ मानता है। इसी आधार व मूल्यों के द्वन्द्व से उसे विश्वास होता है कि टूटने की प्रक्रिया अब इतनी गहरी हो चुकी है कि उसका मन किसी नये परिवर्तन को आत्मसात नहीं करता। अतएव, लीना का पत्र उसे दो विपरीत मूल्यों के मध्य टकराव का अविरल अनुभव करवा कराता है।

'त्रिशंकु' (मन्नू भंडारी) में भी नारी के अर्थार्जन से स्वतंत्र होने पर मम्मी अपने पिता का विरोध करके प्रेम विवाह करती है। बेटी पर अनावश्यक प्रतिबंध लगाना जैसी मान्यताओं को स्वीकार नहीं करती अपितु उसे स्वतंत्रता-पूर्वक लड़कों से मिलने जुलने देती है।

यह ध्यातव्य है कि इन कहानियों में अभिव्यक्त अहं व आर्थिक स्वतंत्रता का मूल्य कहीं दाम्पत्य सम्बंधों में बिखराव लाता है तो कहीं इसी अहं की तुष्टि से पिघल कर वे एक दूसरे से जुड़ जाते हैं। 'दृष्टिदोष' (उषा प्रियंवदा) कहानी इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। फिर भी कहना न होगा कि आज दाम्पत्य सम्बंधों में सबसे बड़ा परिवर्तन एक दूसरे पर एकाधिकार

का है चाहे उसका कारण अर्थार्जन हो अथवा आधुनिकता का परिवेश तथा शिक्षा हो। पुरुष का घर में स्वामित्व विषयक मूल्य तब तक सम्भव था जब तक उन दोनों के कार्यक्षेत्र विभिन्न थे। जिस समय नारी ने घर की चारदीवारी से बाहर पैर रखा उसी समय पर-पुरुष की परछाई से बचने का मूल्य समाप्त होने लगा तथा जहाँ इसका संशय मात्र ही परिवार में कलह मचा देता था वहाँ पति-पत्नी एक दूसरे के मध्य तीसरे व्यक्ति को सहज स्वीकार करने लगे हैं। 'घिरे हुए क्षण' (महीप सिंह) कहानी भी इसी मूल्य को लेकर लिखी हुई प्रतीत होती है। इसके नायक-नायिका दिलीप और मोहिनी विवाह से पूर्व पारिवारिक जनों से बहाने बना कर परस्पर मिलते और एक दूसरे को प्रभावित करने के लिए उनकी डींग हाँका करते थे। किन्तु विवाह के पश्चात बहाने बनाने की पूर्ववर्ती वृत्ति की छाप उनके संशय ग्रस्त होने का आधार बनने लगी। दिलीप को अब मोहिनी में अपनी पत्नी के दर्शन न होकर कितने ही व्यक्तियों से घिरी एक औरत के दर्शन होते हैं, और वह उन सभी स्थितियों को विस्मृत कर परिवेश को यथार्थ में झेलने व सहज जीवन-यापन करने का प्रयत्न करता है। इस संशयग्रस्त स्थिति में समझौता कहीं- न कहीं मानसिक अलगाव को व्यक्त करता है।

## 5- दाम्पत्य जीवन और बदलते मूल्य :

स्त्री- पुरुष के सम्बंधों को माध्यम बनाकर साठोत्तर कहानी में जो मूल्य संघर्ष दृष्टिगोचर होता है उसका विवेचन दो रूपों में किया जा सकता है। एक बदलते हुए प्रेम सम्बंध के सन्दर्भ में तथा द्वितीयत:- बदलते दाम्पत्य सम्बंधों के सन्दर्भ में। आज के परिवेश में विवाह का मूल्य एक धार्मिक

कृत्य या सामाजिक संस्कार न रहकर स्त्री- पुरुष के मध्य सहज आवश्यकता की पूर्ति के लिए माना जाता है। इसी कारण परम्परागत आदर्श वाली नारी जहाँ पति को परमेश्वर मान कर पूजती थी वहाँ आज वह पति को केवल जीवन साथी के ही रूप में देखती है।

दूसरा प्रमुख अन्तर प्रेम स्वरूप की बढ़ती जटिलता है जिसने स्त्री-पुरुष को अपने- अपने व्यक्तित्व के प्रति अत्यधिक जागरूक बना दिया है। वे अब प्रेम को शाश्वत मूल्य न मानकर क्षणवादी तथा नितान्त व्यक्तिगत अनुभव के रूप में स्वीकार करते हैं। इन कहानियों में प्रेम की परिणति सामाजिक या नैतिक मूल्यों के अनुरूप न होकर मूल्य संघर्ष को जन्म देती हुई प्रस्तुत हुई है। व्यक्ति जितने चाहता है मित्र बनालेता है। मन्नू भंडारी की 'यही सच है' तथा निरुपमा सेवती की 'शायद हाँ, शायद नहीं' कहानियों में इसी मूल्य- संघर्ष को उभारा गया है। इनमें नारी दो प्रेमियों के मध्य प्रेम के झूठे झुलावे में भटकती रहती है तथा किसे छोड़ूँ किसे स्वीकार करूँ इसका निर्णय अन्त तक नहीं कर पाती। उसे प्रत्येक स्थिति सहज स्वाभाविक दृष्टिगोचर होती है। कहीं पाप-बोध या अनौचित्य का बोध उसे नहीं सताता। महीपसिंह कृत 'एक लड़की शोभा', 'और और वृत्त' तथा 'गन्ध' कहानियों में भी इसी प्रेम रूपी मूल्य संघर्ष को प्रधानता दी गयी है। ~~एक~~ ~~लड़की~~ शोभा किसी से मित्रता, किसी से प्रेम तथा किसी अन्य से विवाह करती तो गन्ध कहानी की शान्ता न जाने कितने व्यक्तियों के मध्य अपने प्रेम की गन्ध फैला चुकी है। 'और और वृत्त' कहानी से स्पष्ट है कि अनेक उच्च-पदाधिकारी अपने गन्तव्य पर अपनी कार से न जाकर, बसों में सफर करती अनेक स्त्रियों के निकट बैठने में आनन्दानुभूति प्राप्त करते हैं। मनोविश्लेषणों

से सिद्ध हो चुका है कि विषमलिंगी आकर्षण प्रकृतिजन्य है। अतः प्रेम अपने परंपरागत मूल्य से प्रतिबद्ध न रह कर कहीं व्यक्ति को अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए प्रेरित करता है तो कहीं पारिवारिक सम्बंधों में बिखराव का कारण बनता है। इसी मूल्य परिवर्तन व स्वार्थ की पूर्ति के लिए आज कहीं-कहीं पति स्वयं ही अपनी पत्नी को 'सोसाइटी गर्ल' बनाकर अफसरों के सम्मुख भेजने में संकोच का अनुभव नहीं करता। कहीं- कहीं उसे अपनी पत्नी का दूसरे व्यक्ति के प्रति समर्पित होना अच्छा नहीं लगता और उसमें परंपरागत मूल्य के प्रति आस्था तथा अपने एकाधिकार व स्वामित्व की ललक रहती है परन्तु जब उसे अपने अटके हुए कार्यों में सफलता तथा पदोन्नति जैसे अवसर दृष्टिगोचर होते हैं तब वह इन्हीं नये मूल्यों को सहर्ष स्वीकार कर लेता है। मोहन राकेश की 'जख्म', 'रोजगार', 'फटा हुआ जूता' तथा रवीन्द्र कालिया की 'काला रजिस्टर' आदि कहानियाँ उक्त तथ्यों को उजागर करती हैं। यह तथ्य केवल पुरुषों तक ही सीमित नहीं हैं। कई बार परिवार के अन्य सदस्य भी अर्थ-लोलुपता के वशीभूत होकर दांपत्य जीवन की आदर्शवादी मान्यता के विरुद्ध आचरण को अपनाने के लिए नारी को प्रेरित करते हैं। कुछ कहानियों की अनेक माताएँ अपने स्वतंत्र सम्बंध व अर्थ लाभ की स्वार्थ पूर्ति के लिए अपनी युवा- बेटियों का सौदा करने व उनके स्वच्छंद यौन सम्बंध स्वीकार करने में किसी संकोच का अनुभव नहीं करती। 'रिश्ता' (गिरिराजकिशोर), 'दूसरे का भोग', ('अपना मरना' (गंगा प्रसाद विमल), 'मरुस्थल' (मोहन राकेश), 'काला बाप-गोरा बाप' (महीपसिंह) आदि कहानियाँ इसी प्रकार की हैं। आज के बदलते हुए परिवेश में नारी को सोसाइटी गर्ल बनाने में एक नया मूल्य 'फैशन' भी विशेष रूप से कार्यशील है। इसमें निहित सौन्दर्य प्रदर्शन की चेतना जहाँ सेक्स को उभारती है, वहाँ उसे रूपगर्विता बनाती है। यह गर्विता उसे अनेक विकृतियों की ओर अनायास ले जाती है। मध्यवर्गीय समाज में युवा से लेकर प्रौढ़ावस्था तक फैशन के प्रति विशेष ललक तो दृष्टिगोचर होती है, किन्तु उसके साथ ही

तज्जन्य विकृतियों से अनेक अपराध वृत्तियों को भी पोषण मिलता है।

पूर्ववर्ती विवेचन में लक्ष्य किया जा चुका है कि प्रत्येक युग की अपनी जीवन दृष्टि व नैतिक मूल्य होते हैं। उसी के अनुरूप नर-नारी के सम्बंध को लेकर मान्यताएँ बनती तथा सामाजिक विधि निषेध भी रूपाकार ग्रहण करते हैं। आज परम्परागत नैतिक बन्धन शिथिल होकर टूट रहे हैं। अत: अनेक जगह सामान्य ही नहीं विधवा नारी भी नारी सुलभ भावनाओं से ~~-असम्पृ~~ ओतप्रोत होकर अन्यत्र सम्बंध स्थापित करती दृष्टिगोचर होती है। 'तलाश' (कमलेश्वर) कहानी की मम्मी भी इसी प्रकार की है। नारी की अपने अस्तित्व के प्रति चेतना व सत्ता का जो स्वरूप इस कहानी में मिलता है। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मूल्य माना जा सकता है। अत: कहा जा सकता है कि 'तलाश' कहानी की माँ संभवत: हिन्दी कहानी की पहली माँ है जो माँ होने की अपेक्षाकृत एक नारी अधिक है और अपने जीवन में नारीत्व को ही प्रधान बनाकर सार्थकता प्रदान करती है। सामाजिक दृष्टि या नैतिक मूल्यों में उसका यह नारीत्व प्रदर्शन, उत्कृष्ट है या निकृष्ट यह चिन्ता उसे न होकर उसकी पुत्री को होती है जो माँ को पूर्ण स्वतंत्रता देकर स्वयं घर छोड़ कर हॉस्टिल में रहने चली जाती है। स्त्री- पुरुष के मध्य मूल्य- संघर्ष का मुख्य कारण व्यक्तिक सत्ता ही है। इसी के कारण एक ओर संयुक्त परिवार विघटित होते रहते हैं तो दूसरी ओर दांपत्य सम्बंधों में भी बिखराव आता है। दीप्ति खंडेलवाल की अधिकांश कहानियाँ इसी मूल्य संघर्ष पर आधारित हैं। एक ओर 'एक पारो पुरवैया' में पत्नी की दृष्टि में पति भावहीन व्यक्ति है और वह तृतीय व चतुर्थ व्यक्ति के प्रति आकृष्ट होती है तो दूसरी ओर 'देह की सीता' में डॉ० शालिनी

पति के साथ जुड़ी रहकर भी तीसरे व्यक्ति के सान्निध्य की अपेक्षा रखती है। उसका तर्क है कि उसके पति के प्रति पूर्ण समर्पित होने का अर्थ यह नहीं है कि वह मेजर सहाय जैसे विशिष्ट व्यक्तियों के सान्निध्य से वंचित रहे। 'ऊँचाई' (मन्नू भंडारी) कहानी की शिवानी का भी यही तर्क है कि उसने पति को प्रेम तथा प्रेमी को शरीर दिया है। उसका विचार है कि आज पत्नी पर पवित्रता या सतीत्व का आरोपण, परंपरागत मान्यता को निभा कर पुरुष के स्वामित्व की स्वीकृति मात्र है। शिशिर द्वारा उसका तर्क न मानने पर वह क्षमा याचना के स्थान पर सम्बंध विच्छेद करना उचित समझती है। 'निश्चय' (कुलभूषण) कहानी में भी इसी शारीरिक पवित्रता के मूल्य का संघर्ष है। ऊँचाई कहानी की शिवानी जिस परंपरागत मूल्य का उल्लंघन विवाह पश्चात् करती है, उस मूल्य का उल्लंघन 'निश्चय' कहानी की उर्मि विवाह पूर्व ही करती है तथा अपने कृत्य पर लज्जित न होकर उस स्थिति का साहसपूर्ण सामना करती है। वह किसी पाप-बोध या अनौचित्य बोध से कुंठाग्रस्त न होकर शेष जीवन को भी उसी स्फूर्ति से व्यतीत करना चाहती है। अनचाही गहराइयाँ (मन्नू भंडारी) तथा 'घोड़ी' (द्विजेन्द्रनिर्गुण) आदि कहानियाँ भी पुरुष के एकछत्र शासन को अस्वीकार करनेवाली नारियों को प्रकाश में लाती हैं। अत: स्पष्ट है कि पत्नी के लिए एक ही पुरुष के शारीरिक सम्बंधों तक सीमित रहने का मूल्य आज समाप्त ही दिखाई देता है। नारी अब अनेक सम्बंध स्थापित करती अपने व्यक्तित्व को निखारते-निखारते उसे खो देने पर विवश हो जाती है। अन्त में वह नारी का एक विज्ञापन मात्र बन कर रह जाती है। 'नारी नहीं - नारी का विज्ञापन' (रजनी पनिकर), 'ब्लाटिंग पेपर' (महीप सिंह), 'आत्मघात' (दीप्ति खंडेलवाल) आदि कहानियाँ इसी मूल्य परिवर्तन की द्योतिका कही जा सकती हैं। अत: कहा जा सकता है कि नारी द्वारा इस प्रकार स्वतंत्र व्यक्तित्व का प्रदर्शन

व अहं की चेतना ही पति-पत्नी के मध्य मूल्य संघर्ष को जन्म देती है। आज का पुरुष अपने को कितना भी आधुनिक मानने लगे परन्तु पत्नी के ~~मध्य-मूल्य~~ रूप में उसकी नारी कल्पना किसी न किसी रूप में उस परम्परागत मूल्य से अवश्य संलग्न रहती है जहाँ पत्नी पति की पूर्ण अनुगामिनी बन कर रहती है। वैचारिक दृष्टि से वह इस तथ्य का विरोध भले ही करे परन्तु व्यवहार में वह इसका आकांक्षी अवश्य रहता है। 'जो लिखा नहीं जाता' (कमलेश्वर) कहानी का महेन्द्र इसी प्रकार के मूल्यों से ओतप्रोत है फिर भी अपने को आधुनिक मानता है।

दाम्पत्य जीवन के बदलते मूल्यों के सम्बंध में कहा जा सकता है कि उनमें आज इतनी उन्मुक्तता आ गयी है कि यौन- सम्बंधों की जो चर्चाएँ परंपरागत परिवार में पत्नी अपने पति से स्पष्ट रूप में नहीं कर पाती थी, वही चर्चाएँ आज पति दूसरे की पत्नी से तथा पत्नी पति के मित्र से भी करने में संकोच का अनुभव नहीं करती। 'अपत्नी' (ममता कालिया) कहानी इसी प्रकार की है, जहाँ प्रबोध अपने मित्र व उसकी पत्नी से परिवार नियोजन सम्बंधी वार्तालाप खुले रूप से करता है। यहाँ तक कि नारी अपने स्वच्छंद यौन सम्बंधों को दूसरे के सामने स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं तथा उनमें किसी पाप बोध की अनुभूति की अपेक्षा अपने आधुनिक होने का प्रमाण देते हैं। दूधनाथ सिंह की 'शिनाख्त' कहानी इसी प्रकार के मूल्यों का उद्घोष करती है। अतः उल्लेखनीय है कि आज सामाजिक मूल्य इतने टूटते जा रहे हैं कि एक ओर माँ-बेटी एक ही व्यक्ति की भोग्या बन रही हैं तो दूसरी ओर एक ही घर में पुत्री व माँ, पुत्र व पिता को अपने चंगुल में फँसाने का प्रयत्न करती रहती हैं। 'अनुपस्थित सम्बोधन' (राजेन्द्र यादव), 'तलाश' (कमलेश्वर), 'रिश्ता' (गिरिराज किशोर), 'दूसरे का भोग', 'अपना मरना' (गंगाप्रसाद विमल) आदि कहानियाँ

इस स्थिति का बोध कराती हैं।

उपरिनिर्दिष्ट कहानियों के उदाहरणों द्वारा यह सहज ही लक्ष्य किया जा सकता है कि निजी परिस्थितियों की भिन्नता के साथ- साथ परिवेश की भिन्नता भी व्यक्ति के मूल्यों को प्रभावित करने में सहायक होती है। इस भिन्नता से व्यक्ति अपने समस्त आदर्शों व मूल्यों को त्यागने को प्राय: विवश हो जाता है। पूर्ववर्ती अध्यायों में विवेचित किया जा चुका है कि औद्योगीकरण व नगरीकरण के परिणाम स्वरूप गाँव नगर में, नगर महानगर में परिवर्तित होने की स्थिति में आ रहे हैं। उनमें रहने वाले परिवार कहीं नगरीय जीवन के मूल्यों को स्वीकार करते हैं तो कहीं गाँव के मूल्यों को। यही परिवेशजन्य परिवर्तन व्यक्ति के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाता है।

## 6- परिवेश जन्य भिन्नता और मूल्यों में परिवर्तन :

यह निर्दिष्ट किया जा चुका है कि औद्योगीकरण, शिक्षा का प्रसार, नगरीकरण आदि के कारण व्यक्ति अनेक कहानियों में गाँव छोड़कर नगर आते हैं तथा बदलती परिस्थितियों में व्यक्ति कहीं गाँव के प्रति लगाव रखते हैं तो कभी अपने नगरीय परिवेश की यांत्रिकता में ही लीन हो जाते हैं। रामदरश मिश्र की अधिकांश कहानियाँ इसी परिवेश जन्य भिन्नता से परिवर्तित मूल्यों की कहानियाँ हैं। 'छूटता हुआ नगर' कहानी में युवक को गाँव से शहर आये पन्द्रह वर्ष हो गये हैं फिर भी वह अपने गाँव के संस्कारों के प्रति आस्थावान है। नगर में उसे प्रत्येक जगह नगरीय यांत्रिकता से त्रस्त मूल्यों से टकराना पड़ता है जिनसे असफल होने पर वह गाँव में रहना ही उचित समझता है, तो दूसरी ओर 'चिट्ठियों के बीच' कहानी इससे विपरीत स्थिति का

द्योतन करती है। इसमें डॉ० देव नगरीय यांत्रिकता में अपने गाँव को विस्मृत कर देता है और अपने एकाकी परिवार की आर्थिक, पारिवारिक समस्याओं के मध्य विचार करता है कि उसे '---- माँ- बेटा, भाई- भाई, पति-पत्नी के बीच का हाइफन निकाल कर कामा लगाना है, सुखी होने का यही रास्ता है। --- तमाम सम्बंधों से गुँथे हुए लम्बे परिवार को ढोना पुराना बोध है, टूटा हुआ मूल्य है। वह साहित्यकार है, उसे पुराने बोध, टूटे मूल्यों को छोड़ना ही पड़ेगा ---- ।[10] फलत: वह गाँव के हमदर्दी, भाईचारा जैसे मूल्यों को त्याग कर वैयक्तिकता का मूल्य अपना लेता है।

गाँव व नगरीय परिवेश के मध्य आर्थिक वैषम्य की स्थिति भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है, जिसने अनेक प्राचीन मूल्यों को नींव से हटाने का प्रयत्न किया है। यही कारण है कि वर्षों से चली आ रही संयुक्त परिवार प्रथा महानगरों में समाप्त हो चुकी है तथा गाँवों में समाप्त होने की स्थिति में है। 'एक औरत: एक जिन्दगी', 'खंडहर की आवाज' इसी प्रकार की मूल्य संघर्ष की कहानियाँ हैं। यह उल्लेखनीय है कि व्यक्ति जब गाँव छोड़ कर नगर आता है तब अपने गाँव के परिवार के प्रति भी संवेदना तथा उत्तरदायित्व का अनुभव करता है तो दूसरी ओर नगरीय परिवेश में अपनी पत्नी, बच्चों की बढ़ती आर्थिक आवश्यकताएँ तथा समस्याएँ कठिनाई से पूरी कर पाता है। अत: गाँव के परिवार के प्रति अपनी पूरी संवेदना रखते हुए भी उससे पृथक होता जाता है। "एक वह' (रामदरश मिश्र) कहानी- संग्रह की अधिकांश कहानियाँ इसी संवेदना से परिपूर्ण हैं। दूसरी ओर नगरीय परिवेश में रहने पर व्यक्ति का दृष्टिकोण तथा आचार-विच व्यवहारों में परिवर्तन आने लगता है। छुट्टियों में अथवा किसी विशेष अवसर पर गाँव आने पर वह आत्मीयता-बोध की अनुभूति नहीं कर पाता।

'तन्हाई' (बल्लभ सिद्धार्थ), 'संतप्त लोक' (गोपाल उपाध्याय), 'कुम्हड़े की सब्जी', 'कुछ करने के लिए' (सुबोध श्रीवास्तव) आदि कहानियाँ इसी दृष्टि-कोण व नगरीय मूल्यों की प्रधानता को अंकित करती हैं।

परिवेश जन्य भिन्नता और मूल्यों में परिवर्तन को 'रूपायित करने वाली कहानियों के सन्दर्भ में उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त उनका एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी उल्लेखनीय है कि कुछ कहानियों में गाँव के सड़े गले मूल्यों-यथा परिवार में सास के कठोर नियंत्रण के कारण पति- पत्नी के लिए एक दूसरे का सानिध्य उपलब्ध न हो सकना- जैसी स्थितियों के प्रति वितृष्णा व व्यर्थता बोध का भाव दृष्टिगोचर होता है। यह भाव पुरानी जीवन दृष्टि को तोड़ता है और जीवन मूल्यों को नयी दिशा की ओर आगे बढ़ने के लिए व्यक्ति को प्रेरित भी करता है। 'एक यात्रा सतह के नीचे' (शिवप्रसाद सिंह) में नायक अपनी माँ के कठोर नियंत्रण से पत्नी को उबारने की असमर्थता में गाँव से पलायन करना चाहता है तो दूसरी ओर 'रक्तपात' (दूधनाथसिंह) कहानी का नायक बुढ़िया माँ(सास) के रूप में गाँव के सड़े मूल्यों(नियंत्रण) को धक्के देकर निकालता व नकारता है। अत: समग्रतया कहा जा सकता है कि परंपरागत मूल्यों के खोखलेपन तथा जड़तासे व्यक्ति अब प्राय: मुक्त होना चाहता है। मुक्त होने के लिए किये गये प्रयत्न ही मूल्य- संघर्ष को जन्म देते हैं तथा तद्गत नवविकास का पथ प्रशस्त करते हैं। दूसरे शब्दों में इस कारण अनेक परंपरागत मूल्य शिथिल होकर टूटने लगते हैं तथा नये मूल्यों का विकास होने लगता है। यही मूल्य संघर्ष साठोत्तर कहानियों में पूर्ण रूप से अंकित दृष्टि-गोचर होता है।

## मूल्यांकन :

पूर्ववर्ती पृष्ठों के विवेचन से स्पष्ट होता है कि युगीन परिस्थितियों के

कारण जीवन मूल्य किस प्रकार परिवर्तित होकर कहानियों का केन्द्र बिन्दु बन रहे हैं। इनमें व्यक्ति, जीवन व उसके विविध पारिवारिक सम्बंध, तीसरे व्यक्ति की कल्पना, पारिवारिक विघटन, पीढ़ी संघर्ष से सम्बंधित नवीन मूल्यों का चित्रण विशेष रूप से हुआ है। इन कहानियों में कुछ प्राचीन मूल्य अपवाद स्वरूप मिलते हैं तथा अन्य मूल्यों की विकृत स्थिति अपेक्षाकृत अधिक मिलती है। ग्रामों में भी अनेक परंपरागत मूल्यों का शनैः शनैः ह्रास हो रहा है। आज के वैज्ञानिक युग में, जहाँ समय व स्थान की दूरियाँ कम होती जा रही हैं वहाँ परस्पर मन की दूरियाँ उतनी ही तेजी के साथ बढ़ती जा रही हैं। फलतः व्यक्ति अपने भीतर ही सिमटता जा रहा है, जिससे कभी वह अजनबीपन या एकाकीपन से पीड़ित रहता है तो कभी उसका व्यक्तित्व भी कुंठित होता है। आज के भाग दौड़ वाले जीवन में वह तनाव, घुटन तथा विवशता का शिकार है तो कहीं परंपरागत मूल्यों के प्रति विद्रोह में अपने को असमर्थ पाता है। एक ओर वह पुराने मूल्य स्वीकार नहीं करता तो दूसरी ओर नये मूल्यों को पूर्णतया आत्मसात नहीं करपाता। संघर्ष की अवस्था तथा मूल्यों की विकृत अवस्था में वह अपने को कुंठित करता जा रहा है।

इस प्रकार इन विवेचनों के आधार पर कहा जा सकता है कि साठोत्तर कहानियों में व्यक्ति का एक नया स्वरूप तथा जीवन के नये आयाम उभर कर आये हैं जिसने हिन्दी कहानियों को एक नयी दिशा, नया शिल्प तथा नयी मानसिकता प्रदान की है। इनमें व्यक्ति चेतना तथा बौद्धिकता से प्रभावित सामाजिक रीति- रिवाजों परंपरागत मान्यताओं को नवीन रूप में प्रस्तुत किया गया है। अतः बौद्धिकता तथा अति वैयक्तिकता के कारण मानवीय मूल्य आज मात्र अर्थगत तथा कामगत संस्कारों तक ही सीमित रह गये हैं। इसी

कारण कहानियों में चित्रित परंपरागत सामाजिक सम्बंधों के साथ- साथ पारिवारिक जीवन अस्त-व्यस्त सा प्रतीत होता है तथा दाम्पत्य जीवन-मूल्यों में बिखराव आया है। परिणामत: पारिवारिक जीवन, सामाजिक सम्बंधों, नर-नारी के रिश्ते-नातों सभी में परिवर्तन प्रतिलक्षित होता है, जिसका अंकन साठोत्तर कहानी में पूर्ण रूप से मिलता है। ये कहानियाँ यौन-चेतना, नारी -चेतना, व्यक्ति चेतना तथा उनके फलस्वरूप पीढ़ी-संघर्ष से विशेष रूप से प्रभावित हैं जो पारिवारिक जीवन के नवीन आयामों के सशक्त पक्ष हैं। सामाजिक सन्दर्भ में पारिवारिक परिवेश साठोत्तर कहानियों के अंतर्गत किस प्रकार विश्लेषित हुआ है यह भी विचार करना आवश्यक है क्योंकि परिवार की रचना समाज द्वारा ही होती है।

अत: इस पर हम स्वतंत्र रूप से अगले अध्याय में विचार करेंगे।

--

सन्दर्भ- संकेत :

1- सविता जैन- समकालीन हिंदी कहानी और मूल्य संघर्ष की दिशा, पृष्ठ-123, संचेतना- दो दशक की कथा यात्रा, मूल्यांकन विशेषांक, मार्च-70, संयुक्तांक ।

2- मोहन राकेश- उसकी रोटी, पहचान तथा अन्य कहानियाँ, कहानी संग्रह ।

3- कृष्णा सोबती- तिन पहाड़- यारों के यार तिन पहाड़, कहानी संग्रह, पृष्ठ-125

4- वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता, पुरानी मिट्टी: नये ढाँचे, पुरानी मिट्टी नये ढाँचे, कहानी संग्रह, पृष्ठ-103

5- शानी- जिन्दगी जलती है, बबूल की छाँव- कहानी संग्रह, पृष्ठ-131

6- निर्मल वर्मा- मायादर्पण, जलती झाड़ी, कहानी संग्रह, पृष्ठ-30

7- मेहरुन्निसा परवेज, आतंक भरा सुख, श्रेष्ठ समानान्तर कहानियाँ, सं0 हिमांशु जोशी, पृष्ठ-137

8- महीप सिंह- लोग, इक्यावन कहानियाँ- पृष्ठ-219

9- मोहन राकेश- माध्यम की खोज : नयी कहानी का सवाल, सं0 सुरेन्द्र चौधरी, नई कहानी : दशा, दिशा, सम्भावना, पृष्ठ-65

10- रामदरश मिश्र- चिट्ठियों के बीच, खाली घर- कहानी संग्रह ।

--